International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 30-32

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 30-32
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-01-2023
Accepted: 15-02-2023

डॉ. तीर्थानंद मिश्रा
सहायक आचार्य, राजकीय मीराकन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

सूर्यबाला चौबीसा
शोधार्थी संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. तीर्थानंद मिश्रा
सहायक आचार्य, राजकीय मीराकन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

संस्कृत नाटकों में पर्यावरण चिन्तन

डॉ. तीर्थानंद मिश्रा, सूर्यबाला चौबीसा

सारांश
प्रततशाख्यों में व्यंजन वर्णो को आधी मात्रा में उच्चाररत होने वाली ध्वनि माना गया है। मात्र चतुरध्यातयका इसका अपिाद है, जो इसका उच्चारर्ण काल एक मात्रा मानती है। नाससक्य ध्वनियों के उच्चारर्ण में अन्य ध्वनियों की अपेक्षा अधधक समय लगता है। अिसान में स्स्थत उत्तम स्पशों के उच्चारर्ण में ऐसा होता है। ह्रस्व-स्वर के बाद उच्चाररत होने वाले यकार, वकार तथा लकार का उच्चारर्ण दो मात्रा काल में होता है एिं ककसी व्यंजन के पश्चात् उच्चररत होने पर इनका उच्चारर्ण डेढ़ मात्राकाल में होता है तथा दीर्य स्वर से पूर्व उच्चररत होने वाला रेफ एकमात्रत्रक उच्चाररत होता है। व्यंजन का मापन सामान्यतः अधयमात्रा क्यों माना गया था, इसका कारर्ण यह बतलाया गया है कक व्यंजन का अधयमात्रा में उच्चररत होना उसका स्वर के साथ संपकय के कारर्ण ही है। व्यंजनों के उच्चारर्ण में मात्राधधक्य का विधान उसके आधारभूत स्वर के प्रभाव के कारर्ण ही ककया गया है। सियसम्मत-सशक्षा में स्वररहित व्यंजन का उच्चारर्ण काल चौथाई मात्रा माना गया है।

कूटशब्दः प्रततशाख्य, चतुरध्यातयका, नाससक्र्, अवसान, मात्राचिक्र्, स्फोटनकाल, संघर्षी ध्वतन, उदात्त

प्रस्तावना
प्राचीन भारतीय संस्कृति में पर्यावरण का महत्व शुरु से परिलक्षित होता रहा है। हमारे वेद उपनिषद, ग्रंथों व नाटकी में व्याधि रहित जीवन के लिए पर्यावरण (प्रकृति) शिक्षा को शिक्षा का एक अंग माना था। परन्तु 20वीं सदी में वनों का विनाश, जनसंख्या वृद्धि औद्योगिकरण व प्रदूषण के कारण पर्यावरण सुरक्षा विश्व का एक प्रमुख विषय बन गया है। वर्तमान में रोटी कपड़ा और मकान की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही स्वच्छ पर्यावरण का महत्व है।

आज समुये विश्व में बिगड़ते पर्यावरण और बढ़ते प्रदूषण को लेकर महत्ती चिंता प्रकट की जा रही है। आज विश्व की सबसे गहन व्यसन्त समस्या के रूप में इसे देखा और समझा जा रहा है। कटते जन और बढ़ते जन संग्रह ने सृष्टि के तत्व के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। पर्यावरण को शुद्ध रख पाने को उपक्रम जटिल होता जा रहा है। 20वीं उत्तरा से यह रूप धारण कर चुकी है ओजोन की परत निरन्तर प्रदूषण से पतली होती हुई पृथ्वी का निरन्तर भीतर ही भीतर गर्म होना पानी सतह का निरन्तर नीचे जाना फैलते रेगिस्तान, सिकुड़ते वन मिटती हुई पशु पक्षी सम्पदा प्रदूषित नदियाँ सभी जोर-शोर से सही व्यंजित कर रहे है कि कदाचित सर्वनाश निकट है। यदि इस दिशा मे त्वरित और ईमानदारी से प्रयास नहीं किए गए तो सारी सृष्टि का विनाश होता जाएगा। अतः इनकी सुरक्षा करना अनिवार्य है।

इस संदर्भ में यदि हम चिन्तन करे तो हम पाते हैं कि हमारे पास संस्कृत साहित्य से बढ़कर और कोई प्रामाणिक साक्ष्य सुलभ नहीं है अतएव भारतीय पर्यावरण चिन्तन परम्परा के अनुशीलन के लिए संस्कृत साहित्य के विविध पक्षों का समालोचन ही समधीनी होगा। क्योंकि वैदिक साहित्य पुराण, स्मृति ग्रन्थ में पर्यावरण का ज्ञान लव प्रतीकात्मक रूप से अनुस्यूत हैं। इसी क्रम में हमारे संस्कृत नाट्यकारों

ने नाटकों में प्रकृति संरक्षण पर दृष्टिपात किया है। कालिदास, बाणभट्ट हर्ष इत्यादि नाट्यकारों ने पर्यावरण की सुंदर विवेचना प्रस्तुत की है। कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नामक नाटक की नायिका शकुन्तला निसर्ग कन्या है यह नाटक पूर्ण रूप से प्रकृति के इर्द-गिर्द घूमता हैं नायिका व अन्य पात्र अरण्य में तपोवन, तपोवन, में आरम, आश्रम में मनुष्य, स्त्री-पुरुष, ऋषि-कुमारियाँ पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, साथ-साथ रहते है कण्व के आश्रम में हरने वाली शकुन्तला तथा उसकी दोनों सखियों, प्रियवदा तथा अनसूया के सज्जा- आभूषण तथा परिधान आदि सामग्री वृक्षादि से प्रापत होती थी। तथा बालाएं वृक्षों के साथ भ्रातृत्व व्यवहार रखती थी। प्रकृति के मानवीय करण तथा मानव के प्रकृति प्रेम का जैसा निदर्शन अभिज्ञान शाकुन्तल में है ऐसा अन्य ग्रंथ में नहीं हैं अतः जब वृक्ष चिन्तन के समय में हवा से हिलते हुए पत्तों वाला, केसर वृक्ष मानों अंगुलियों के संकेत से शकुन्तला को बुला रहा है शकुन्तला को उसका मन रखना ही होगा। इसलिए कहती है-यावेदना सम्भावयवानि जरा इस सम्भाल लूं। इस प्रकार कण्वाश्रम पूर्ण रूप से प्रकृति चित्रण से भरा पड़ा था।

शकुन्तला-विदाई के वर्णन में भी प्रकृति का मनोहरम वर्णन प्रस्तुत किया है, शकुन्तला की विदाई पर वृक्ष से पड़े, वन देवताओं ने आशीर्वाद दिया हरिनियों ने दंभ खाना छोड़ दिया, वनस्पतियों वियोग में आसू बहाने लगी वन ज्योत्स्ना और 'शकुन्तला तो बहने हैं फुट-फुट कर रोने लगी।

'अस्य जन% कस्य हस्ते समर्पित मे कौन रखेगा।

गर्भिणी मृगवधू और मृग शावक पुत्र तो शकुन्तला को एक तरफ मिलन धाम लेता है। शकुन्तला को एक तरफ मिलन की चाह तो दूसरी तरफ वियोग को व्यथा।

जिस वनस्पति से शकुन्तला में चितवन और विलास का सौन्दय जागा उस सौन्दर्य की सफलता इसी में थी, कि शकुन्तला वनस्पति का सरक्षण करें। श्रृंगार प्रसाधान से सौन्दर्य का वर्धन करने वाली शकुन्तला वृक्ष सचन कर वृक्ष-पर्यावरण का पालन करती थी। सौन्दर्यवर्धन और पर्यावरण संरक्षण की ऐसा अदभूत आदान-प्रदान अभिज्ञान शकुन्तला की मोहनीय विशेषता है।

महाकवि कालिदास ने गालविकाग्निमित्र में विदिशा के राजा अग्निमित्र तथा विदर्भ के राजा की पुत्री मालविका की प्रणय कथा की पाँच अंको में पिरोया है। इसमें प्राकृतिक सौन्दर्यता का वर्णन करते हुए बताया है।

पत्रच्छायसु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिका पद्मिनीना।
सौधान्यत्यर्थतापाद्बलापि परिचय देषि पारवतानि।।
बिनदुक्ष्पान पिपासु परिसरति शिखी भान्तिमवारियत्र
सर्वे रूस्त्रे समग्रैस्त्वमिव नृपगुणोंदीप्यते सप्वः सप्ति ।।"

अर्थात उद्यान और उपवनों के अनुरूप पशु-पक्षी सम्पदा भी वर्णित है। बसन्त ऋतु के अनुरूप प्रेमदवन में कोकिल मधुर कुजन करते है। भ्रमर तिलक पुष्पों से संयुक्त होते है। सूर्यताप से बचने के लिये हंस आँखे मूंद हूए बावड़ी में कमलपत्र की छाया में जाकर छुप जाते हैं, धूप और गर्मी के कारण कबूतर राजभवन की छतों पर नहीं आ रहे हैं और प्यासे मोर फव्वारे से पानी पीने को उत्सुक है। उसके चारों ओर चक्कर काट रहे है। उपवन के परिवेश के अनुरूप पशु-पक्षी कीट आदि का निरूपण भी किया है यथा- बात अशोक तय के पत्तों की खाने का प्रयास करता है राजकुमारी वसुलक्ष्मी का हराने वाला पिंगलवानर है। पशु-पक्षी का व्यवहार नियत्रित सा है । क्यांकि वे दीर्घिका या सौध या वारियंत्र से घिर हूए है। इन्हें उन्मुक्त वातावरण प्राप्त नहीं है। अतः मानवकृत संरक्षण एवं संवर्धन का इन जीवों के विकास पर प्रभाव पड़ता हैं

इस प्रकार अपने नाटकों द्वारा महाकवि कालिदास ने प्रकृति प्रेम के इस आदान-प्रदान का महत्व दिया हैं कि मानव जितना प्रकृति या पर्यावरण से लेता है। प्राकृतिक संसाधनों का जितना भोग-उपभोग करता हैं उतनी मात्रा में उन संसाधनों, वनस्पतियों खनिजों, रत्नों उन साधन सामग्रियों के संरक्षण और संवर्धन का ख्याल रख एवं तथा संसाधनों का अपव्यय नहीं करे। विलास में वैभव का विनाश नहीं करा तो पर्यावरण संतुलित रखा जा सकता हैं परस्पर आदान-प्रदान में स्नेह-सूत्र का होना आवश्यक हैं मित्रों के कठिन कार्य स्नेह के कारण है पूरे होते है। केवल बुद्धि बल में कोई अपने मित्रों के कार्य पूरे नहीं कर सकता है। कोई कार्य शुरू से अन्त तक निभाना तभी संभव है। जब काम करने वाला अपने मित्र से पूर्ण स्नेह भी रखता हो ।

वर्तमान समय में यदि इस प्रकार की भावना लेकर प्रकृति के साथ सामन्जस्य स्थापित करे तो हम पर्यावरण संरक्षण कर सकते है और हमारी संस्कृति हमें यही प्रेरणा देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभि. शाकु -1 / 28
2. कालिदास ग्रन्थावली - पृ. 354
3. अभि. शाकु -1/17, वही 3/5
4. मालविका मित्र . - 3 / 4
5. माल. मित्र-अंक-2
6. कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नोहोनाप्युपलभ्यतै मालविकाग्निमित्र - 4/6